Chapter बारह

कुमारों तथा अन्यों की सृष्टि

मैत्रेय उवाच
इति ते वर्णितः क्षत्तः कालाख्यः परमात्मनः ।
महिमा वेदगर्भोऽथ यथास्राक्षीन्निबोध मे ॥ १ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—श्री मैत्रेय ने कहा; इति—इस प्रकार; ते—तुमसे; वर्णितः—वर्णन किया गया; क्षत्तः—हे विदुर; काल-आख्यः—नित्य काल नामक; परमात्मनः—परमात्मा की; महिमा—ख्याति; वेद-गर्भः—वेदों के आगार, ब्रह्मा; अथ—इसके बाद; यथा—जिस तरह यह है; अस्राक्षीत्—उत्पन्न किया; निबोध—समझने का प्रयास करो; मे—मुझसे।.

श्री मैत्रेय ने कहा : हे विद्वान विदुर, अभी तक मैंने तुमसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के काल-रूप की महिमा की व्याख्या की है। अब तुम मुझसे समस्त वैदिक ज्ञान के आगार ब्रह्मा की सृष्टि के विषय में सुन सकते हो।

ससर्जाग्रेऽन्धतामिस्रमथ तामिस्रमादिकृत् ।
महामोहं च मोहं च तमश्चाज्ञानवृत्तयः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

ससर्ज—उत्पन्न किया; अग्रे—सर्वप्रथम; अन्ध-तामिस्रम्—मृत्यु का भाव; अथ—तब; तामिस्रम्—हताशा पर क्रोध; आदि-कृत्—ये सभी; महा-मोहम्—भोग्य वस्तुओं का स्वामित्व; च—भी; मोहम्—भ्रान्त धारणा; च—भी; तमः—आत्मज्ञान में अंधकार; च—भी; अज्ञान—अविद्या; वृत्तयः—पेशे, वृत्तियाँ।.

ब्रह्मा ने सर्वप्रथम आत्मप्रवंचना, मृत्यु का भाव, हताशा के बाद क्रोध, मिथ्या स्वामित्व का भाव तथा मोहमय शारीरिक धारणा या अपने असली स्वरूप की विस्मृति जैसी अविद्यापूर्ण वृत्तियों की संरचना की।

तात्पर्य : विभिन्न प्रकार की योनियों में जीवों की वास्तविक सृष्टि के पूर्व ब्रह्मा ने वे परिस्थितियाँ उत्पन्न कीं जिनके अन्तर्गत जीवों को इस भौतिक जगत में रहना होता है। जब तक जीव अपने असली स्वरूप को भूल नहीं जाता तब तक जीवन की भौतिक अवस्थाओं में रह पाना उसके लिए असम्भव है। अतएव भौतिक जीवन की पहली दशा है अपने असली स्वरूप की विस्मृति। अपने असली स्वरूप को भूलने पर मनुष्य का मृत्यु से भयभीत होना निश्चित है, यद्यपि शुद्ध आत्मा मृत्युरहित तथा जन्मरहित होता है। भौतिक प्रकृति के साथ यह झूठी पहचान उन वस्तुओं के मिथ्या स्वामित्व का कारण है, जो श्रेष्ठ नियंत्रण की व्यवस्था द्वारा प्रदत्त होती हैं। जीव को समस्त भौतिक संसाधन इसलिए प्रदान किये

जाते हैं कि वह शान्तिपूर्वक रह सके और बद्धजीवन में आत्म-साक्षात्कार के कर्तव्यों को निभा सके। किन्तु झूठी पहचान के कारण बद्धजीव भगवान् की सम्पत्ति के झूठे स्वामित्व के भाव में बन्धक हो जाता है। इस श्लोक से यह स्पष्ट है कि स्वयं ब्रह्मा परमेश्वर की सृष्टि हैं और भौतिक जगत की पाँच प्रकार की अविद्याएँ, जो जीवों को बद्ध बनाती हैं वे ब्रह्मा की सृष्टियाँ हैं। यह सोचना नितान्त हास्यास्पद है कि जीव परम पुरुष के तुल्य है, जबकि वह यह समझ सकता है कि बद्धजीव ब्रह्मा की जादुई छड़ी के वश में हैं। पतञ्जलि भी यह स्वीकार करते हैं कि अविद्या पाँच प्रकार की है जिनका यहाँ पर उल्लेख हुआ है।

दृष्ट्वा पापीयसीं सृष्टिं नात्मानं बह्वमन्यत ।
भगवद्ध्यानपूतेन मनसान्यां ततोऽसृजत् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; पापीयसीम्—पापमयी; सृष्टिम्—सृष्टि को; न—नहीं; आत्मानम्—स्वयं को; बहु—अत्यधिक हर्ष; अमन्यत—अनुभव किया; भगवत्—भगवान् का; ध्यान—ध्यान; पूतेन—उसके द्वारा शुद्ध; मनसा—मन से; अन्याम्—दूसरा; ततः—तत्पश्चात्; असृजत्—उत्पन्न किया।

ऐसी भ्रामक सृष्टि को पापमय कार्य मानते हुए ब्रह्माजी को अपने कार्य में अधिक हर्ष का अनुभव नहीं हुआ, अतएव उन्होंने भगवान् के ध्यान द्वारा अपने आपको परि शुद्ध किया। तब उन्होंने सृष्टि की दूसरी पारी की शुरुआत की।

तात्पर्य : यद्यपि ब्रह्माजी ने विभिन्न प्रकार की अविद्याओं की सृष्टि की, किन्तु वे ऐसे अप्रशंसित कार्य को सम्पन्न करके संतुष्ट नहीं थे। उन्हें यह कार्य इसलिए करना पड़ा, क्योंकि अधिकांश बद्धात्माएँ ऐसा चाहती थीं। भगवान् कृष्ण का *भगवद्गीता* (१५.१५) में कथन है कि वे सबों के हृदय में उपस्थित हैं और हर एक को स्मरण करने या भुलाने में सहायता करते हैं। यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि सर्वदयामय भगवान् एक की सहायता स्मरण रखने में और दूसरे की विस्मरण करने में क्यों करते हैं। वस्तुत: उनकी कृपा एक के प्रति पक्षपात के रूप में तथा दूसरे के प्रति शत्रुता के रूप में प्रदर्शित नहीं होती। भगवान् के अंश रूप में जीव अंशत: स्वतंत्र है, क्योंकि उसमें भगवान् के समस्त गुण अंशत: पाये जाते हैं। जिस किसी के पास थोड़ी सी भी स्वतंत्रता होती है, वह अज्ञानवश उसका दुरुपयोग कर सकता है। अब जीव अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करने को अच्छा मानकर अविद्या में

जाने लगता है, तो सर्वदयालु भगवान् सर्वप्रथम उसको पाश से बचाने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु जब जीव नरक की ओर गिरते जाने पर उतारू हो जाता है, तो भगवान् उसे उसकी असली स्थिति को भुलवाने में सहायता करते हैं। भगवान् गिरने वाले जीव को सबसे निचले बिन्दु तक गिरने में सहायता करते हैं जिससे वह देख सके कि अपनी स्वतंत्रता के दुरुपयोग से वह सुखी है कि नहीं।

इस जगत में सड़ रहे प्राय: सारे बद्धजीव अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग कर रहे हैं अत: उन पर पाँचों प्रकार की अविद्याएँ थोप दी जाती हैं। ब्रह्माजी भगवान् के आज्ञाकारी सेवक के रूप में अविद्याओं को आवश्यकताओं के रूप में उत्पन्न करते हैं, किन्तु ऐसा करते हुए वे प्रसन्न नहीं होते, क्योंकि यह स्वाभाविक है कि भगवद्भक्त किसी को उसके असली पद से नीचे गिरता नहीं देखना चाहता। जो व्यक्ति साक्षात्कार के मार्ग की परवाह नहीं करते उन्हें भगवान् उनकी दुष्प्रवृत्तियों को जी भर के करने देते हैं और ब्रह्मा उसमें निश्चित रूप से सहायक बनते हैं।

सनकं च सनन्दं च सनातनमथात्मभू: ।
सनत्कुमारं च मुनीन्निष्क्रियानूर्ध्वरेतस: ॥ ४॥

शब्दार्थ

सनकम्—सनक; च—भी; सनन्दम्—सनन्द; च—तथा; सनातनम्—सनातन; अथ—तत्पश्चात्; आत्म-भू:—स्वयंभू ब्रह्मा; सनत्-कुमारम्—सनत्कुमार; च—भी; मुनीन्—मुनिगण; निष्क्रियान्—समस्त सकाम कर्म से मुक्त; ऊर्ध्व-रेतस:—वे जिनका वीर्य ऊपर की ओर प्रवाहित होता है।.

सर्वप्रथम ब्रह्मा ने चार महान् मुनियों को उत्पन्न किया जिनके नाम सनक, सनन्द, सनातन तथा सनत्कुमार हैं। वे सब भौतिकतावादी कार्यकलाप ग्रहण करने के लिए अनिच्छुक थे, क्योंकि ऊर्ध्वरिता होने के कारण वे अत्यधिक उच्चस्थ थे।

तात्पर्य : यद्यपि ब्रह्मा ने अविद्या के सिद्धान्तों की सृष्टि उन जीवों की आवश्यकता के रूप में की जिन के भाग्य में भगवान् की इच्छा से अविद्या बदी थी, किन्तु वे ऐसा अप्रशंसित कार्य करके सन्तुष्ट नहीं थे। इसलिए उन्होंने ज्ञान के चार सिद्धान्तों की सृष्टि की। ये हैं सांख्य, योग, वैराग्य तथा तप। *सांख्य* भौतिक अवस्थाओं के वैश्लेषिक अध्ययन के लिए अनुभवात्मक दर्शन है, योग भवबन्धन से शुद्ध आत्मा को मोक्ष दिलाने के लिए है, *वैराग्य* उच्चतम आध्यात्मिक ज्ञान तक ऊपर उठने के लिए जीवन में भौतिक भोग से पूर्णविरक्ति को स्वीकार करना है और तप आध्यात्मिक सिद्धि के लिए

विभिन्न प्रकार की स्वेच्छा से की गई तपस्या है। ब्रह्मा ने सनक, सनन्द, सनातन तथा सनत् इन चार मुनियों की रचना आध्यात्मिक उन्नति के इन चार सिद्धान्तों को सौंपने के लिए की और इन्होंने अपना निजी *सम्प्रदाय* चलाया जो भक्ति की उन्नति के लिए कुमार सम्प्रदाय अथवा बाद में निम्बार्क सम्प्रदाय कहलाया। ये सभी महान् मुनिगण महान् भक्त बने, क्योंकि भगवान् की भक्ति के बिना आध्यात्मिक महत्त्व के किसी कार्य में सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती।

तान्बभाषे स्वभूः पुत्रान्प्रजाः सृजत पुत्रकाः ।
तन्नैच्छन्मोक्षधर्माणो वासुदेवपरायणाः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

तान्—उन कुमारों से, जिनका उल्लेख ऊपर हुआ है; बभाषे—कहा; स्वभूः—ब्रह्मा ने; पुत्रान्—पुत्रों से; प्रजाः—सन्तानें; सृजत—सृजन करने के लिए; पुत्रकाः—मेरे पुत्रो; तत्—वह; न—नहीं; ऐच्छन्—चाहते हुए; मोक्ष-धर्माणः—मोक्ष के सिद्धान्तों के प्रति प्रतिज्ञाबद्ध; वासुदेव—भगवान् के प्रति; परायणाः—परायण, अनुरक्त।

पुत्रों को उत्पन्न करने के बाद ब्रह्मा ने उनसे कहा, ''पुत्रो, अब तुम लोग सन्तान उत्पन्न करो।'' किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् वासुदेव के प्रति अनुरक्त होने के कारण उन्होंने अपना लक्ष्य मोक्ष बना रखा था, अतएव उन्होंने अपनी अनिच्छा प्रकट की।

तात्पर्य : ब्रह्मा के चारों पुत्रों, कुमारों ने अपने महान् पिता ब्रह्मा के अनुरोध करने पर भी गृहस्थ बनने से इनकार कर दिया। जो लोग भव-बन्धन से छुटकारा पाने के लिए तत्पर हैं उन्हें मिथ्या पारिवारिक बन्धन में नहीं बँधना चाहिए। लोग यह पूछ सकते हैं कि कुमारों ने अपने पिता विशेषकर ब्रह्माण्ड के स्रष्टा ब्रह्मा के आदेशों से इनकार क्यों किया? इसका उत्तर यह है कि जो *वासुदेव-परायण* हैं, अर्थात् जो भगवान् वासुदेव की भक्ति में गम्भीरतापूर्वक लगे हुए हैं उन्हें अन्य किसी कार्य की परवाह करने की आवश्यकता नहीं है। *भागवत* (११.५.४१) में आदेश है कि—

देवर्षिभूताप्तनृणां पितृणां न किंकरो नायमृणी च राजन्।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्॥

''जिस किसी ने भी समस्त सांसारिक सम्बन्धों का परित्याग कर दिया है और उन भगवान् के चरणकमलों की पूर्ण शरण ले रखी है, जो हमारे मोक्षदाता हैं और एकमात्र शरण-ग्रहण करने के योग्य हैं वह किसी का न तो ऋणी है न किसी का दास है चाहे वह देवता, पितर, मुनि सम्बन्धी तथा अन्य

जीव सम्बन्धी तथा मानव समाज का सदस्य क्यों न हो।'' इस तरह जब कुमारों ने अपने महान् पिता के इस अनुरोध को ठुकरा दिया कि वे गृहस्थ बन जाँय तो उनके इस कार्य में कोई त्रुटि न थी।

सोऽवध्यातः सुतैरेवं प्रत्याख्यातानुशासनैः ।
क्रोधं दुर्विषहं जातं नियन्तुमुपचक्रमे ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (ब्रह्मा); अवध्यातः—इस प्रकार अनादरित होकर; सुतैः—पुत्रों द्वारा; एवम्—इस प्रकार; प्रत्याख्यात—आज्ञा मानने से इनकार; अनुशासनैः—अपने पिता के आदेश से; क्रोधम्—क्रोध; दुर्विषहम्—असहनीय; जातम्—इस प्रकार उत्पन्न; नियन्तुम्—नियंत्रण करने के लिए; उपचक्रमे—भरसक प्रयत्न किया।

पुत्रों द्वारा अपने पिता के आदेश का पालन करने से इनकार करने पर ब्रह्मा के मन में अत्यधिक क्रोध उत्पन्न हुआ जिसे उन्होंने व्यक्त न करके दबाए रखना चाहा।

तात्पर्य : ब्रह्माजी भौतिक प्रकृति के रजोगुण के प्रभारी निदेशक हैं। अतएव अपने पुत्रों द्वारा अपने आदेश का उल्लंघन होने पर उनका क्रुद्ध होना स्वाभाविक था। यद्यपि कुमारों द्वारा ऐसे कार्य से इनकार किया जाना उचित था, किन्तु रजोगुण में लीन होने से ब्रह्माजी अपना आवेशपूर्ण क्रोध रोक नहीं सके। किन्तु उन्होंने उसे व्यक्त नहीं किया, क्योंकि वे जानते थे कि उनके पुत्र आध्यात्मिक उन्नति में अत्यधिक प्रबुद्ध हैं, अतएव उन्हें उनके समक्ष अपना क्रोध व्यक्त नहीं करना चाहिए।

धिया निगृह्यमाणोऽपि भ्रुवोर्मध्यात्प्रजापतेः ।
सद्योऽजायत तन्मन्युः कुमारो नीललोहितः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

धिया—बुद्धि से; निगृह्यमाणः—नियंत्रित हुए; अपि—के बावजूद; भ्रुवोः—भौहों के; मध्यात्—बीच से; प्रजापतेः—ब्रह्मा के; सद्यः—तुरन्त; अजायत—उत्पन्न हुआ; तत्—उसका; मन्युः—क्रोध; कुमारः—बालक; नील-लोहितः—नीले तथा लाल का मिश्रण।

यद्यपि उन्होंने अपने क्रोध को दबाए रखने का प्रयास किया, किन्तु वह उनकी भौंहों के मध्य से प्रकट हो ही गया जिससे तुरन्त ही नीललोहित रंग का बालक उत्पन्न हुआ।

तात्पर्य : क्रोध चाहे जानकर प्रकट किया जाय या अनजाने में, उसकी मुखाकृति वही रहती है। यद्यपि ब्रह्मा ने अपना क्रोध नियंत्रित करना चाहा, किन्तु वे ऐसा नहीं कर पाये, तबभी, जबकि वे सर्वोच्च पुरुष हैं। ऐसा क्रोध ब्रह्मा की भौंहों के बीच से रुद्र के रूप में अपने सही रंग में प्रकट हो आया जो नीले (तमो) तथा लाल (रजो) रंग का मिश्रण था, क्योंकि क्रोध रजो तथा तमो गुणों की

उपज है।

स वै रुरोद देवानां पूर्वजो भगवान्भवः ।
नामानि कुरु मे धातः स्थानानि च जगद्गुरो ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; वै—निश्चय ही; रुरोद—जोर से चिल्लाया; देवानाम् पूर्वजः—समस्त देवताओं में ज्येष्ठतम; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; भवः—शिवजी; नामानि—विभिन्न नाम; कुरु—नाम रखो; मे—मेरा; धातः—हे भाग्य विधाता; स्थानानि—स्थान; च—भी; जगत्-गुरो—हे ब्रह्माण्ड के शिक्षक।

जन्म के बाद वह चिल्लाने लगा : हे भाग्यविधाता, हे जगद्गुरु, कृपा करके मेरा नाम तथा स्थान बतलाइये।

इति तस्य वचः पाद्मो भगवान्परिपालयन् ।
अभ्यधाद्धद्रया वाचा मा रोदीस्तत्करोमि ते ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; तस्य—उसकी; वचः—याचना; पाद्मः—कमल के फूल से उत्पन्न हुआ; भगवान्—शक्तिशाली; परिपालयन्—याचना स्वीकार करते हुए; अभ्यधात्—शान्त किया; भद्रया—भद्र, मृदु; वाचा—शब्दों द्वारा; मा—मत; रोदीः—रोओ; तत्—वह; करोमि—करूँगा; ते—जैसा तुम चाहते हो।

कमल के फूल से उत्पन्न हुए सर्वशक्तिमान ब्रह्मा ने उसकी याचना स्वीकार करते हुए मृदु वाणी से उस बालक को शान्त किया और कहा—मत चिल्लाओ। जैसा तुम चाहोगे मैं वैसा ही करूँगा।

यदरोदीः सुरश्रेष्ठ सोद्वेग इव बालकः ।
ततस्त्वामभिधास्यन्ति नाम्ना रुद्र इति प्रजाः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

यत्—जितना; अरोदीः—जोर से रोया; सुर-श्रेष्ठ—हे देवताओं के प्रधान; स-उद्वेगः—अत्यधिक चिन्ता सहित; इव—सदृश; बालकः—बालक; ततः—तत्पश्चात्; त्वाम्—तुमको; अभिधास्यन्ति—पुकारेंगे; नाम्ना—नाम लेकर; रुद्रः—रुद्र; इति—इस प्रकार; प्रजाः—लोग।

तत्पश्चात् ब्रह्मा ने कहा : हे देवताओं में प्रधान, सभी लोगों के द्वारा तुम रुद्र नाम से जाने जाओगे, क्योंकि तुम इतनी उत्सुकतापूर्वक चिल्लाये हो।

हृदिन्द्रियाण्यसुर्व्योम वायुरग्निर्जलं मही ।
सूर्यश्चन्द्रस्तपश्चैव स्थानान्यग्रे कृतानि ते ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

हृत्—हृदय; इन्द्रियाणि—इन्द्रियाँ; असुः—प्राणवायु; व्योम—आकाश; वायुः—वायु; अग्निः—आग; जलम्—जल; मही—पृथ्वी; सूर्यः—सूर्य; चन्द्रः—चन्द्रमा; तपः—तपस्या; च—भी; एव—निश्चय ही; स्थानानि—ये सारे स्थान; अग्रे—इसके पहले के; कृतानि—पहले किये गये; ते—तुम्हारे लिए।

हे बालक, मैंने तुम्हारे निवास के लिए पहले से निम्नलिखित स्थान चुन लिये हैं: हृदय, इन्द्रियाँ, प्राणवायु, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा तथा तपस्या।

तात्पर्य : ब्रह्मा के क्रोध के फलस्वरूप उनकी भौहों के बीच से रुद्र का जन्म, जो कि कुछ-कुछ तमोगुण तथा रजोगुण से उत्पन्न हुआ था, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। *भगवद्गीता* (३.३७) में रुद्रतत्त्व का वर्णन हुआ है। क्रोध काम से उत्पन्न होता है, जो रजोगुण का प्रतिफल है। जब काम तथा लालसा अतुष्ट रह जाते हैं, तो क्रोध उत्पन्न होता है, जो बद्धजीव का भीषण शत्रु है। इस अति पापमय तथा शत्रुवत् काम का प्रतिनिधित्व *अहंकार*—अपने आपको सर्वेसर्वा सोचने की मिथ्या अहंवादी प्रवृत्ति—के रूप में होता है। बद्धजीव जो कि पूरी तरह भौतिक प्रकृति के वश में है उसके लिए इस अहंकार के होने को *भगवद्गीता* में मूर्खतापूर्ण कहा गया है। यह अहंकार हृदय में रुद्र का रूप है जहाँ क्रोध उत्पन्न होता है। यह क्रोध हृदय में विकसित होता है और विविध इन्द्रियों यथा आँखों, हाथों, पावों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। जब मनुष्य क्रुद्ध होता है, तो वह ऐसे क्रोध को लाल-लाल आँखों से और कभी कभी मुट्ठी बाँध कर या पैर पटक कर प्रदर्शित करता है। रुद्र तत्त्व का यह प्रदर्शन ऐसे स्थानों में रुद्र की उपस्थिति का प्रमाण है। जब कोई व्यक्ति क्रुद्ध होता है, तो वह तेजी से साँस लेता है और इस तरह प्राणवायु द्वारा या श्वास लेने की क्रियाओं द्वारा रुद्र का प्रतिनिधित्व होता है। जब आकाश में घने बादल घिरे रहते हैं और वे क्रोध में गरजते हैं और जब वायु प्रचण्ड रूप से बहती है, तो रुद्र तत्त्व प्रकट होता है और इसी तरह जब सागर का जल वायु द्वारा क्रुद्ध किया जाता है, तो वह रुद्र के विषाद्-रूप जैसा प्रतीत होता है, जो सामान्य व्यक्ति के लिए अतीव भयावह है। जब आग धधकती होती है, तो भी हम रुद्र की उपस्थिति का अनुभव कर सकते हैं और जब पृथ्वी पर बाढ़ आती है, तो हम यह समझ सकते हैं कि यह भी रुद्र का स्वरूप है।

पृथ्वी के ऐसे अनेक प्राणी हैं, जो निरन्तर रुद्र तत्त्व का प्रतिनिधित्व करते हैं। साँप, बाघ तथा सिंह सदा ही रुद्र के स्वरूप हैं। कभी-कभी सूर्य की अधिक ऊष्मा के कारण लू लगती है और चन्द्रमा के द्वारा उत्पन्न अत्यधिक शीतलता के कारण हृदयगति रुकने की घटनाएँ होती हैं। ऐसे अनेक मुनि हैं, जो

तपस्या द्वारा शक्त्याविष्ट होते हैं और अनेक योगी, दार्शनिक तथा त्यागी हैं, जो क्रोध तथा काम के रुद्रतत्त्व के वशीभूत होकर अपनी अर्जित शक्ति को यदा-कदा प्रदर्शित करते हैं। महान् योगी दुर्वासा ने इसी रुद्रतत्त्व के प्रभाव में आकर महाराज अम्बरीष से झगड़ा किया और एक ब्राह्मण बालक ने महान् राजा परीक्षित को शाप देकर रुद्रतत्व का प्रदर्शन किया। जब रुद्रतत्त्व ऐसे व्यक्तियों द्वारा प्रकट किया जाता है, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की भक्ति में नहीं लगे हैं, तो क्रुद्ध व्यक्ति अपने उच्चस्थ उन्नत स्थान से नीचे गिर जाता है। इसकी पुष्टि *श्रीमद्भागवत* (१०.२.३२) में इस प्रकार हुई है—

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः।

आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रियः॥

निर्विशेषवादी का सबसे दयनीय पतन उसके इस झूठे तथा तर्क-हीन दावे के कारण होता है कि वह ब्रह्म से तदाकार है।

मन्युर्मनुर्महिनसो महाञ्छिव ऋतध्वजः ।
उग्ररेता भवः कालो वामदेवो धृतव्रतः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

मन्युः, मनुः, महिनसः, महान्, शिवः, ऋतध्वजः, उग्ररेताः, भवः, कालः, वामदेवः, धृतव्रतः—ये सभी रुद्र के नाम हैं।

ब्रह्माजी ने कहा : हे बालक रुद्र, तुम्हारे ग्यारह अन्य नाम भी हैं—मन्यु, मनु, महिनस, महान, शिव, ऋतुध्वज, उग्ररेता, भव, काल, वामदेव तथा धृतव्रत।

धीर्धृतिरसलोमा च नियुत्सर्पिरिलाम्बिका ।
इरावती स्वधा दीक्षा रुद्राण्यो रुद्र ते स्त्रियः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

धीः, धृति, रसला, उमा, नियुत्, सर्पिः, इला, अम्बिका, इरावती, स्वधा, दीक्षा रुद्राण्यः—ये ग्यारह रुद्राणियाँ हैं; रुद्र—हे रुद्र; ते—तुम्हारी; स्त्रियः—पत्नियाँ।

हे रुद्र, तुम्हारी ग्यारह पत्नियाँ भी हैं, जो रुद्राणी कहलाती हैं और वे इस प्रकार है—धी, धृति, रसला, उमा, नियुत्, सर्पि, इला, अम्बिका, इरावती, स्वधा तथा दीक्षा।

गृहाणैतानि नामानि स्थानानि च सयोषणः ।
एभिः सृज प्रजा बह्वीः प्रजानामसि यत्पतिः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

गृहाण—स्वीकार करो; एतानि—इन सारे; नामानि—विभिन्न नामों को; स्थानानि—तथा स्थानों को; च—भी; स-योषण:—पत्नियों समेत; एभि:—उनके द्वारा; सृज—उत्पन्न करो; प्रजा:—सन्तानें; बह्वी:—बड़े पैमाने पर; प्रजानाम्—जीवों के; असि—तुम हो; यत्—क्योंकि; पति:—स्वामी।

हे बालक, अब तुम अपने तथा अपनी पत्नियों के लिए मनोनीत नामों तथा स्थानों को स्वीकार करो और चूँकि अब तुम जीवों के स्वामियों में से एक हो अत: तुम व्यापक स्तर पर जनसंख्या बढ़ा सकते हो।

तात्पर्य : रुद्र के पिता के रूप में ब्रह्मा ने अपने पुत्र के लिए पत्नियाँ, उसके लिए वासस्थान तथा उसके नामों का भी चयन किया। यह स्वाभाविक है कि पुत्र अपने पिता द्वारा चुनी गई पत्नी को स्वीकार करे जिस तरह वह अपने पिता द्वारा रखे नाम को या पिता द्वारा प्रदत्त सम्पत्ति को स्वीकार करता है। संसार की जनसंख्या बढ़ाने का यह सामान्य तरीका है। दूसरी ओर चारों कुमार हैं जिन्होंने अपने पिता की भेंट स्वीकार नहीं की, क्योंकि वे बहुत से पुत्र उत्पन्न करने के कार्य की अपेक्षा बहुत उच्च पद पर थे। जिस तरह पुत्र उच्च उद्देश्य के लिए अपने पिता के आदेश को अस्वीकार कर सकता है उसी तरह पिता उच्च उद्देश्य के लिए जनसंख्या बढ़ाने में अपने पुत्रों का पालन करने से इनकार कर सकता है।

इत्यादिष्ट: स्वगुरुणा भगवान्नीललोहित: ।
सत्त्वाकृतिस्वभावेन ससर्जात्मसमा: प्रजा: ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; आदिष्ट:—आदेश दिये जाने पर; स्व-गुरुणा—अपने ही गुरु द्वारा; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; नील-लोहित:—रुद्र, जिनका रंग नीले तथा लाल का मिश्रण है; सत्त्व—शक्ति; आकृति—शारीरिक स्वरूप; स्वभावेन—तथा अत्यन्त उग्र स्वभाव से; ससर्ज—उत्पन्न किया; आत्म-समा:—अपने ही तरह की; प्रजा:—सन्तानें।

नील-लोहित शारीरिक रंग वाले अत्यन्त शक्तिशाली रुद्र ने अपने ही समान स्वरूप, बल तथा उग्र स्वभाव वाली अनेक सन्तानें उत्पन्न कीं।

रुद्राणां रुद्रसृष्टानां समन्ताद्ग्रसतां जगत् ।
निशाम्यासङ्ख्यशो यूथान्प्रजापतिरशङ्कत ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

रुद्राणाम्—रुद्र के पुत्रों का; रुद्र-सृष्टानाम्—रुद्र द्वारा उत्पन्न किये गये; समन्तात्—एकसाथ एकत्र होकर; ग्रसताम्—निगलते समय; जगत्—ब्रह्माण्ड; निशाम्य—उनके कार्यकलापों को देखकर; असङ्ख्यशः—असीम; यूथान्—टोली, समूह; प्रजा-पतिः—जीवों के पिता; अशङ्कत—भयभीत हो गया।

रुद्र द्वारा उत्पन्न पुत्रों तथा पौत्रों की संख्या असीम थी और जब वे एकत्र हुए तो वे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को निगलने लगे। जब जीवों के पिता ब्रह्मा ने यह देखा तो वे इस स्थिति से भयभीत हो उठे।

तात्पर्य : क्रोध के अवतार रुद्र की सन्तानें विश्व-व्यापार को बनाये रखने में इतनी भयानक थीं कि जीवों के पिता ब्रह्मा भी उन से भयभीत हो गये। रुद्र के तथाकथित भक्त या अनुयायी भी कष्टकारक ही हैं। कभी-कभी वे रुद्र के लिए भी घातक बन जाते हैं। कभी-कभी रुद्र के वंशज रुद्र की कृपा से रुद्र का वध करने की योजनाएँ बनाते हैं। ऐसा है उनके भक्तों का स्वभाव!

अलं प्रजाभिः सृष्टाभिरीदृशीभिः सुरोत्तम ।
मया सह दहन्तीभिर्दिशश्चक्षुर्भिरुल्बणैः ॥ १७॥

शब्दार्थ

अलम्—व्यर्थ; प्रजाभिः—ऐसे जीवों द्वारा; सृष्टाभिः—उत्पन्न; ईदृशीभिः—इस प्रकार के; सुर-उत्तम—हे देवताओं में सर्वश्रेष्ठ; मया—मुझको; सह—सहित; दहन्तीभिः—जलती हुई; दिशः—सारी दिशाएँ; चक्षुर्भिः—आँखों से; उल्बणैः—दहकती लपटें।

ब्रह्मा ने रुद्र से कहा : हे देवश्रेष्ठ, तुम्हें इस प्रकार के जीवों को उत्पन्न करने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने अपने नेत्रों की दहकती लपटों से सभी दिशाओं की सारी वस्तुओं को विध्वंस करना शुरू कर दिया है और मुझ पर भी आक्रमण किया है।

तप आतिष्ठ भद्रं ते सर्वभूतसुखावहम् ।
तपसैव यथा पूर्वं स्रष्टा विश्वमिदं भवान् ॥ १८॥

शब्दार्थ

तपः—तपस्या; आतिष्ठ—बैठिये; भद्रम्—शुभ; ते—तुम्हारा; सर्व—समस्त; भूत—जीव; सुख-आवहम्—सुख लानेवाली; तपसा—तपस्या द्वारा; एव—ही; यथा—जितना; पूर्वम्—पहले; स्रष्टा—उत्पन्न करेगा; विश्वम्—ब्रह्माण्ड; इदम्—यह; भवान्—आप।

हे पुत्र, अच्छा हो कि तुम तपस्या में स्थित होओ जो समस्त जीवों के लिए कल्याणप्रद है और जो तुम्हें सारे वर दिला सकती है। केवल तपस्या द्वारा तुम पूर्ववत् ब्रह्माण्ड की रचना कर सकते हो।

तात्पर्य : विराट जगत की उत्पत्ति, पालन तथा संहार के लिए क्रमशः तीन देवता ब्रह्मा, विष्णु तथा

महेश्वर अथवा शिव उत्तरदायी हैं। रुद्र को यह सलाह दी गई कि सृजन तथा पालन की अवधि में वे विनाश न करें, अपितु तपस्या करने बैठ जाँय तथा प्रलय (संहार) की प्रतीक्षा करें, जब उनकी सेवाओं का उपयोग किया जायेगा।

तपसैव परं ज्योतिर्भगवन्तमधोक्षजम् ।
सर्वभूतगुहावासमञ्जसा विन्दते पुमान् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तपसा—तपस्या से; एव—एकमात्र; परम्—परम; ज्योतिः—प्रकाश; भगवन्तम्—भगवान् को; अधोक्षजम्—वह जो इन्द्रियों की पहुँच के परे है; सर्व-भूत-गुहा-आवासम्—सारे जीवों के हृदय में वास करने वाले; अञ्जसा—पूर्णतया; विन्दते—जान सकता है; पुमान्—मनुष्य।

एकमात्र तपस्या से उन भगवान् के भी पास पहुँचा जा सकता है, जो प्रत्येक जीव के हृदय के भीतर हैं किन्तु साथ ही साथ समस्त इन्द्रियों की पहुँच के बाहर हैं।

तात्पर्य : ब्रह्मा ने रुद्र को तपस्या करने के लिए सलाह दी जो उनके पुत्रों तथा अनुयायियों के लिए उदाहरणस्वरूप थी कि भगवान् की कृपा पाने के लिए तपस्या आवश्यक है। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि सामान्य जन महाजनों द्वारा दिखाये गये पथ का अनुसरण करते हैं। इस तरह रुद्र की सन्तानों से ऊबकर तथा जनसंख्या के बढ़ने से निगले जाने से भयभीत होकर ब्रह्मा ने रुद्र से और अधिक अवांछित सन्तानें उत्पन्न न करने तथा परमेश्वर की कृपा प्राप्त करने के लिए तपस्या करने की सलाह दी। अतएव चित्रों में हम देखते हैं कि रुद्र सदैव भगवान् की कृपा पाने के लिए ध्यानावस्थित रहते हैं। अप्रत्यक्ष रूप से रुद्र के पुत्रों तथा अनुयायियों को सलाह दी जा सकती है कि रुद्र तत्त्व का अनुसरण न करते हुए संहार कार्य बन्द कर दें जब कि ब्रह्मा की शान्तिपूर्ण सृष्टि हो रही हो।

मैत्रेय उवाच
एवमात्मभुवादिष्टः परिक्रम्य गिरां पतिम् ।
बाढमित्यमुमामन्त्र्य विवेश तपसे वनम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—श्री मैत्रेय ने कहा; एवम्—इस प्रकार; आत्म-भुवा—ब्रह्मा द्वारा; आदिष्टः—इस तरह प्रार्थना किये जाने पर; परिक्रम्य—प्रदक्षिणा करके; गिराम्—वेदों के; पतिम्—स्वामी को; बाढम्—उचित; इति—इस प्रकार; अमुम्—ब्रह्मा को; आमन्त्र्य—इस प्रकार सम्बोधित करते हुए; विवेश—प्रविष्ट हुए; तपसे—तपस्या के लिए; वनम्—वन में।

श्री मैत्रेय ने कहा : इस तरह ब्रह्मा द्वारा आदेशित होने पर रुद्र ने वेदों के स्वामी अपने पिता

की प्रदक्षिणा की। हाँ कहते हुए उन्होंने तपस्या करने के लिए वन में प्रवेश किया।

अथाभिध्यायतः सर्गं दश पुत्राः प्रजज्ञिरे ।
भगवच्छक्तियुक्तस्य लोकसन्तानहेतवः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

अथ—इस प्रकार; अभिध्यायतः—सोचते हुए; सर्गम्—सृष्टि; दश—दस; पुत्राः—पुत्र; प्रजज्ञिरे—उत्पन्न करते हुए; भगवत्—श्रीभगवान् से सम्बन्धित; शक्ति—ऊर्जा; युक्तस्य—शक्तिमान बने हुए; लोक—संसार; सन्तान—संतति; हेतवः—कारण।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा शक्ति प्रदान किये जाने पर ब्रह्मा ने जीवों को उत्पन्न करने की सोची और सन्तानों के विस्तार हेतु उन्होंने दस पुत्र उत्पन्न किये।

मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

मरीचिः, अत्रि, अङ्गिरसौ, पुलस्त्यः, पुलहः, क्रतुः, भृगुः, वसिष्ठः, दक्षः—ब्रह्मा के पुत्रों के नाम; च—तथा; दशमः—दसवाँ; तत्र—वहाँ; नारदः—नारद।

इस तरह मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष तथा दसवें पुत्र नारद उत्पन्न हुए।

तात्पर्य : विराट जगत के सृजन, पालन तथा संहार की सम्पूर्ण प्रक्रिया बद्धजीवों को भगवद्धाम वापस जाने का अवसर देने के निमित्त है। ब्रह्मा ने अपने सर्जनात्मक प्रयास में सहायता के लिए रुद्र को उत्पन्न किया, किन्तु रुद्र प्रारम्भ से ही सारी सृष्टि को निगलने लगे, अतः उन्हें ऐसे विनाशकारी कार्य से रोका जाना पड़ा। फलतः ब्रह्मा ने अच्छे बच्चों की दूसरी टोली का सृजन किया जो अधिकांशतया सांसारिक सकाम कर्मों के पक्ष में थे। किन्तु वे भली भाँति जानते थे कि भगवद्भक्ति के बिना बद्ध-जीवों को कोई लाभ नहीं मिलता; फलतः उन्होंने अन्त में अपने योग्य पुत्र नारद को जन्म दिया जो सारे अध्यात्मवादियों के परम गुरु हैं। भगवद्भक्ति के बिना कोई व्यक्ति कर्म के किसी भी क्षेत्र में उन्नति नहीं कर सकता यद्यपि भक्ति का मार्ग किसी भी भौतिक वस्तु से स्वतंत्र है। एकमात्र भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति जीवन के असली लक्ष्य को दिलाने वाली है। अतः ब्रह्मा के समस्त पुत्रों में श्रीमन् नारद मुनि द्वारा की गई सेवा सर्वोच्च है।

उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे दक्षोऽङ्गुष्ठात्स्वयम्भुवः ।
प्राणाद्वसिष्ठः सञ्जातो भृगुस्त्वचि करात्क्रतुः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

उत्सङ्गात्—दिव्य विचार-विमर्श से; नारदः—महामुनि नारद; जज्ञे—उत्पन्न किया गया; दक्षः—दक्ष; अङ्गुष्ठात्—अँगूठे से; स्वयम्भुवः—ब्रह्मा के; प्राणात्—प्राणवायु से या श्वास लेने से; वसिष्ठः—वसिष्ठ; सञ्जातः—उत्पन्न हुआ; भृगुः—भृगु, मुनि; त्वचि—स्पर्श से; करात्—हाथ से; क्रतुः—क्रतु मुनि।

नारद ब्रह्मा के शरीर के सर्वोच्च अंग मस्तिष्क से उत्पन्न पुत्र हैं। वसिष्ठ उनकी श्वास से, दक्ष अँगूठे से, भृगु उनके स्पर्श से तथा क्रतु उनके हाथ से उत्पन्न हुए।

तात्पर्य : नारद ब्रह्मा के सर्वोच्च विचार-विमर्श से उत्पन्न हुए थे, क्योंकि नारद जिसे भी चाहते उसी को परमेश्वर प्रदान कर सकते थे। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को कितने भी वैदिक ज्ञान के द्वारा या कितनी भी तपस्या के द्वारा अनुभव नहीं किया जा सकता। किन्तु नारद जैसा शुद्ध भगवद्भभक्त अपनी सदिच्छा द्वारा परमेश्वर प्रदान करा सकता है। नारद नाम से यह सुझाव मिलता है कि वे परमेश्वर प्रदान करा सकते हैं। *नार* का अर्थ है ''परमेश्वर'' तथा द का अर्थ है ''जो प्रदान कर सके।'' वह भगवान् को प्रदान कर सकता है का अर्थ यह कदापि नहीं कि भगवान् कोई व्यापारिक वस्तु के सदृश हैं जिसे किसी भी व्यक्ति को प्रदान किया जा सकता है। किन्तु नारद किसी को भी भगवान् के दास, मित्र, माता-पिता या प्रेमी के रूप में भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति प्रदान करा सकते हैं जैसी भी चाह कोई व्यक्ति अपने दिव्य भगवत्प्रेम के कारण कर सके। दूसरे शब्दों में, एकमात्र नारद ही ऐसे हैं, जो *भक्तियोग* का मार्ग प्रदान कर सकते हैं, जो कि परमेश्वर की प्राप्ति के लिए सर्वोच्च योगिक साधन है।

पुलहो नाभितो जज्ञे पुलस्त्यः कर्णयोर्ऋषिः ।
अङ्गिरा मुखतोऽक्ष्णोऽत्रिर्मरीचिर्मनसोऽभवत् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

पुलहः—पुलह मुनि; नाभितः—नाभि से; जज्ञे—उत्पन्न किया; पुलस्त्यः—पुलस्त्यमुनि; कर्णयोः—कानों से; ऋषिः—महामुनि; अङ्गिराः—अंगिरा मुनि; मुखतः—मुख से; अक्ष्णः—आँखों से; अत्रिः—अत्रि मुनि; मरीचिः—मरीचि मुनि; मनसः—मन से; अभवत्—प्रकट हुए।

पुलस्त्य ब्रह्मा के कानों से, अंगिरा मुख से, अत्रि आँखों से, मरीचि मन से तथा पुलह नाभि से उत्पन्न हुए।

धर्मः स्तनाद्दक्षिणतो यत्र नारायणः स्वयम् ।

अधर्मः पृष्ठतो यस्मान्मृत्युर्लोकभयङ्करः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

धर्मः—धर्म; स्तनात्—वक्षस्थल से; दक्षिणतः—दाहिनी ओर के; यत्र—जिसमें; नारायणः—परमेश्वर; स्वयम्—अपने से; अधर्मः—अधर्म; पृष्ठतः—पीठ से; यस्मात्—जिससे; मृत्युः—मृत्यु; लोक—जीव के लिए; भयम्-करः—भयकारक।

धर्म ब्रह्मा के वक्षस्थल से प्रकट हुआ जहाँ पर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण आसीन हैं और अधर्म उनकी पीठ से प्रकट हुआ जहाँ जीव के लिए भयावह मृत्यु उत्पन्न होती है।

तात्पर्य : यह बात अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि धर्म उस स्थान से प्रकट हुआ जहाँ स्वयं भगवान् आसीन हैं, क्योंकि धर्म का अर्थ है भगवान् की भक्तिमय सेवा जिसकी पुष्टि *भगवद्गीता* तथा *भागवत* में हुई है। *भगवद्गीता* में अन्तिम उपदेश धर्म के नाम पर अन्य सारे कार्यों को त्याग कर भगवान् की शरण लेने के लिए है। *श्रीमद्भागवत* में भी पुष्टि हुई है कि धर्म की सर्वोच्च सिद्धि वह है, जो भौतिक अवरोधों से प्रेरित हुए बिना तथा बिना किसी प्रतिरोध के भगवद्भक्ति तक ले जाय। धर्म अपने पूर्ण रूप में भगवद्भक्ति है और अधर्म इसका विलोम है। हृदय शरीर का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है, जबकि पीठ सबसे उपेक्षित अंग है। जब कोई शत्रु हमला करता है, तो मनुष्य पीठ की ओर (पीछे) से प्रहार सहन कर सकता है, किन्तु वह वक्षस्थल पर होने वाले प्रहारों से अपनी रक्षा पूरी सावधानी से करना चाहेगा। सभी प्रकार के अधर्म ब्रह्मा की पीठ से उत्पन्न होते हैं जबकि असली धर्म या भगवद्भक्ति नारायण के वास-स्थान वक्षस्थल से उत्पन्न होती है। जो वस्तु भगवद्भक्ति तक न ले जा सके वह अधर्म है और जो वस्तु भगवद्भक्ति तक ले जाए वह धर्म कहलाती है।

हृदि कामो भ्रुवः क्रोधो लोभश्चाधरदच्छदात् ।
आस्याद्वाक्सिन्धवो मेढ्रान्निर्‌ऋतिः पायोरघाश्रयः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

हृदि—हृदय से; कामः—काम; भ्रुवः—भौंहों से; क्रोधः—क्रोध; लोभः—लालच; च—भी; अधर-दच्छदात्—ओठों के बीच से; आस्यात्—मुख से; वाक्—वाणी; सिन्धवः—समुद्र; मेढ्रात्—लिंग से; निर्‌ऋतिः—निम्न कार्य; पायोः—गुदा से; अघ-आश्रयः—सारे पापों का आगार।

काम तथा इच्छा ब्रह्मा के हृदय से, क्रोध उनकी भौंहों के बीच से, लालच उनके ओठों के बीच से, वाणी की शक्ति उनके मुख से, समुद्र उनके लिंग से तथा निम्न एवं गर्हित कार्यकलाप समस्त पापों के स्रोत उनकी गुदा से प्रकट हुए।

तात्पर्य : बद्ध आत्मा मानसिक चिन्तन के वशीभूत रहता है। कोई संसारी शिक्षा एवं विद्वत्ता के

आकलन में कितना ही बड़ा क्यों न हो, वह मनोवैज्ञानिक कार्यकलापों के प्रभाव से कभी भी मुक्त नहीं हो सकता। अतएव निम्न कार्यों के लिए कामवासना तथा इच्छाओं को तब तक त्याग पाना अतीव कठिन है जब तक कोई भगवद्भक्ति की परम्परा में न हो। जब कोई कामवासना तथा निम्न इच्छाओं से हताश होता है, तो मन में क्रोध उत्पन्न होता है, जिसकी अभिव्यक्ति भौहों के मध्य में होती है। इसलिए सामान्य लोगों को सलाह दी जाती है कि वे अपने मन को भौहों के मध्य के स्थान में केन्द्रित करें जबकि भगवद्भक्तों को अपने मन के आसन में भगवान् को स्थापित करने का अभ्यास रहता है। इच्छाविहीन होने का सिद्धान्त व्यावहारिक नहीं है, क्योंकि मन को इच्छारहित नहीं बनाया जा सकता है। जब यह संस्तुति की जाती है कि मनुष्य इच्छाविहीन बने तो यह समझा जाता है कि मनुष्य को ऐसी चीजों की इच्छा नहीं करनी चाहिए जो आध्यात्मिक मूल्यों का ध्वंस करने वाली हों। भगवद्भक्त सदैव अपने मन में भगवान् को धारण करता है। इस तरह उसे इच्छाविहीन होने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि उसकी सारी आवश्यकताएँ भगवान् की सेवा के सम्बन्ध में होती हैं। बोलने की शक्ति सरस्वती या विद्या की देवी कहलाती है और विद्या की देवी का जन्म स्थान ब्रह्मा का मुख है। भले ही मनुष्य को विद्या की देवी की कृपा प्राप्त हो, किन्तु उसका हृदय कामवासना तथा भौतिक इच्छा से पूर्ण हो सकता है और उसकी भौंहें क्रोध के लक्षण प्रकट कर सकती हैं। कोई सांसारिक दृष्टि से अत्यन्त विद्वान क्यों न हो, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह कामवासना तथा क्रोध के सारे निम्न कार्यों से मुक्त है। केवल शुद्ध भक्त से अच्छे गुणों की आशा की जा सकती है, क्योंकि वह भगवान् के विचारों में या श्रद्धासहित समाधि में सदैव लीन रहता है।

छायायाः कर्दमो जज्ञे देवहूत्याः पतिः प्रभुः ।
मनसो देहतश्चेदं जज्ञे विश्वकृतो जगत् ॥ २७॥

शब्दार्थ

छायायाः—छाया से; कर्दमः—कर्दम मुनि; जज्ञे—प्रकट हुआ; देवहूत्याः—देवहूति का; पतिः—पति; प्रभुः—स्वामी; मनसः—मन से; देहतः—शरीर से; च—भी; इदम्—यह; जज्ञे—उत्पन्न किया; विश्व—ब्रह्माण्ड; कृतः—स्रष्टा का; जगत्—विराट जगत।

महान् देवहूति के पति कर्दम मुनि ब्रह्मा की छाया से प्रकट हुए। इस तरह सभी कुछ ब्रह्मा के शरीर से या मन से प्रकट हुआ।

तात्पर्य : यद्यपि प्रकृति के तीन गुणों में से सदैव एक की प्रधानता रहती है किन्तु वे कभी भी एक दूसरे से मिश्रित हुए बिना प्रदर्शित नहीं होते। यहाँ तक कि रजो तथा तमो इन दो निम्नतर गुणों की उपस्थिति में भी कभी-कभी सतोगुण का अंश रहता है। अत: ब्रह्मा के शरीर या मन से उत्पन्न सारे पुत्र रजोगुणी तथा तमोगुणी थे, किन्तु उनमें से कुछ, यथा कर्दम मुनि सतोगुण से उत्पन्न थे। नारद ब्रह्मा की दिव्य अवस्था में उत्पन्न हुए थे।

वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयम्भूर्हरतीं मन: ।
अकामां चकमे क्षत्त: सकाम इति न: श्रुतम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

वाचम्—वाक्; दुहितरम्—पुत्री को; तन्वीम्—उसके शरीर से उत्पन्न; स्वयम्भू:—ब्रह्मा; हरतीम्—आकृष्ट करते हुए; मन:—मन; अकामाम्—कामुक हुए बिना; चकमे—इच्छा की; क्षत्त:—हे विदुर; स-काम:—कामुक हुआ; इति—इस प्रकार; न:—हमने; श्रुतम्—सुना है।

हे विदुर, हमने सुना है कि ब्रह्मा के वाक् नाम की पुत्री थी जो उनके शरीर से उत्पन्न हुई थी जिसने उनके मन को यौन की ओर आकृष्ट किया यद्यपि वह उनके प्रति कामासक्त नहीं थी।

तात्पर्य : *बलवान् इन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।* (*भागवत* ९.१९.१७) कहा गया है कि इन्द्रियाँ इतनी प्रमत्त तथा प्रबल होती हैं कि वे अत्यन्त विवेकवान तथा विद्वान व्यक्ति को भी मोहित कर सकती हैं। इसलिए सलाह दी जाती है कि कोई व्यक्ति अपनी माता, बहिन या पुत्री के भी साथ अकेले में न रहे। *विद्वांसमपि कर्षति* का अर्थ है कि बड़ा से बड़ा विद्वान भी कामवासना का शिकार बन जाता है। ब्रह्मा अपनी ही पुत्री के प्रति कामासक्त थे, अत: उनके इस अनियमितता को बतलाने में मैत्रेय हिचक रहे थे; फिर भी उन्होंने इसका उल्लेख किया, क्योंकि कभी-कभी ऐसा घटित हो ही जाता है और इसके जीवन्त उदाहरण स्वयं ब्रह्मा हैं, यद्यपि वे आदिजीव हैं और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सबसे अधिक विद्वान हैं। यदि ब्रह्मा जी कामवासना के शिकार हो सकते हैं, तो अन्यों के विषय में क्या कहा जाय जो अनेकानेक संसारी दुर्बलताओं के प्रति उन्मुख हैं? ब्रह्मा की यह असाधारण अनैतिकता किसी विशेष कल्प में घटित हुई सुनी गई थी, किन्तु यह उस कल्प में नहीं घटित हो सकती थी जिसमें ब्रह्मा ने भगवान् से प्रत्यक्ष रूप से *श्रीमद्भागवत* के चार श्लोक सुने थे, क्योंकि *भागवत* का उपदेश देने के बाद भगवान् ने ब्रह्मा को यह वर दिया था कि वे किसी भी कल्प में मोहित नहीं होंगे। इससे यह सूचित

होता है कि *श्रीमद्भागवत* सुनने के पूर्व वे ऐसी कामवासना के शिकार हुए होंगे, किन्तु भगवान् के मुख से *श्रीमद्भागवत* सुन लेने के बाद ऐसी त्रुटि होने की कोई सम्भावना नहीं थी।

फिर भी मनुष्य को इस घटना की ओर गम्भीरता से ध्यान देना चाहिए। मानव एक सामाजिक पशु है और स्त्रियों के साथ अनियंत्रित मेल-जोल से उसका पतन हो जाता है। पुरुष तथा स्त्री की ऐसी सामाजिक स्वतंत्रता, विशेष रूप से युवा वर्ग में, निश्चय ही आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग में महान् अवरोध है। भव-बन्धन एकमात्र यौन बन्धन के कारण है, फलत: पुरुष तथा स्त्री की अनियमित संगति अवश्य ही आध्यात्मिक प्रगति के मार्ग में महान् अवरोध है। मैत्रेय ने ब्रह्मा का यह उदाहरण इस भीषण खतरे के प्रति हमारा घ्यान आकृष्ट करने के लिए ही प्रस्तुत किया।

तमधर्मे कृतमतिं विलोक्य पितरं सुता: ।
मरीचिमुख्या मुनयो विश्रम्भात्प्रत्यबोधयन् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस; अधर्मे—अनैतिकता में; कृत-मतिम्—ऐसे मन वाला; विलोक्य—देखकर; पितरम्—पिता को; सुता:—पुत्रों ने; मरीचि-मुख्या:—मरीचि इत्यादि; मुनय:—मुनिगण; विश्रम्भात्—आदर सहित; प्रत्यबोधयन्—निवेदन किया।

अपने पिता को अनैतिकता के कार्य में इस प्रकार मुग्ध पाकर मरीचि इत्यादि ब्रह्मा के सारे पुत्रों ने अतीव आदरपूर्वक यह कहा।

तात्पर्य : मरीचि जैसे ऋषि द्वारा अपने महान् पिता के कार्यों के विरुद्ध विरोध प्रकट करने में कोई त्रुटि नहीं थी। वे भलीभाँति जानते थे कि यद्यपि उनके पिता ने त्रुटि की है, किन्तु इस घटना के पीछे कोई न कोई बड़ा कारण रहा होगा अन्यथा इतना महान् पुरुष ऐसी त्रुटि नहीं कर सकता था। हो सकता है कि ब्रह्माजी अपने अधीनस्थों को स्त्रियों से व्यवहार करते समय मानव दुर्बलताओं के प्रति आगाह करना चाह रहे हों। आत्म-साक्षात्कार के मार्ग पर चलने वाले पुरुषों के लिए यह सदैव अत्यन्त घातक है। अत: ब्रह्मा जैसे महापुरुष जब त्रुटि करते हैं तब न तो उनकी उपेक्षा करनी चाहिए न ही मरीचि जैसे महर्षि उनके असामान्य आचरण के कारण उनके प्रति किसी प्रकार का अनादर प्रदर्शित कर सके थे।

नैतत्पूर्वै: कृतं त्वद्ये न करिष्यन्ति चापरे ।

यस्त्वं दुहितरं गच्छेरनिगृह्याङ्गजं प्रभुः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

न—कभी नहीं; एतत्—ऐसी वस्तु; पूर्वैः—किसी पूर्व कल्प में अन्य किसी ब्रह्मा द्वारा या तुम्हारे द्वारा; कृतम्—सम्पन्न; त्वत्—तुम्हारे द्वारा; ये—वह जो; न—न तो; करिष्यन्ति—करेंगे; च—भी; अपरे—अन्य कोई; यः—जो; त्वम्—तुम; दुहितरम्—पुत्री के प्रति; गच्छेः—जायेगा; अनिगृह्य—अनियंत्रित होकर; अङ्गजम्—कामेच्छा; प्रभुः—हे पिता।

हे पिता, आप जिस कार्य में अपने को उलझाने का प्रयास कर रहे हैं उसे न तो किसी अन्य ब्रह्मा द्वारा न किसी अन्य के द्वारा, न ही पूर्व कल्पों में आपके द्वारा, कभी करने का प्रयास किया गया, न ही भविष्य में कभी कोई ऐसा दुस्साहस ही करेगा। आप ब्रह्माण्ड के सर्वोच्च प्राणी हैं, अतः आप अपनी पुत्री के साथ संभोग क्यों करना चाहते हैं और अपनी इच्छा को वश में क्यों नहीं कर सकते?

तात्पर्य : ब्रह्मा का पद ब्रह्माण्ड में सर्वोच्च पद है और ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मा अनेक हैं और जिस ब्रह्माण्ड में हम रह रहे हैं इसके अतिरिक्त अनेक ब्रह्माण्ड हैं। इस पद पर स्थित रहनेवाले का आचरण आदर्श होना चाहिए, क्योंकि ब्रह्मा सारे जीवों के लिए आदर्श प्रस्तुत करते हैं। सर्वाधिक पवित्र तथा आध्यात्मिक दृष्टि से उच्चस्थ जीव ब्रह्मा को भगवान् के बाद का पद प्रदान किया गया है।

तेजीयसामपि ह्येतन्न सुश्लोक्यं जगद्गुरो ।
यद्वृत्तमनुतिष्ठन्वै लोकः क्षेमाय कल्पते ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तेजीयसाम्—अत्यन्त शक्तिशालियों में; अपि—भी; हि—निश्चय ही; एतत्—ऐसा कार्य; न—उपयुक्त नहीं; सु-श्लोक्यम्—अच्छा आचरण; जगत्-गुरो—हे ब्रह्माण्ड के गुरु; यत्—जिसका; वृत्तम्—चरित्र; अनुतिष्ठन्—पालन करते हुए; वै—निश्चय ही; लोकः—जगत; क्षेमाय—सम्पन्नता के लिए; कल्पते—योग्य बन जाता है।

यद्यपि आप सर्वाधिक शक्तिमान जीव हैं, किन्तु यह कार्य आपको शोभा नहीं देता क्योंकि सामान्य लोग आध्यात्मिक उन्नति के लिए आपके चरित्र का अनुकरण करते हैं।

तात्पर्य : कहा जाता है कि परम शक्तिशाली जीव चाहे तो कुछ भी कर सकता है और ऐसे कार्यों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उदाहरणार्थ, इस ब्रह्माण्ड में सूर्य सबसे शक्तिशाली अग्निमय ग्रह है। वह कहीं से भी जल को भाप बनाकर उड़ा सकता है और फिर भी उतना ही शक्तिशाली बना रहता है। सूर्य गन्दे स्थानों से जल को उड़ाता है फिर भी वह गंदगी के गुण से संदूषित नहीं होता। इसी तरह ब्रह्मा सभी दशाओं में महाभियोग से मुक्त बने रहते हैं। किन्तु फिर भी सारे जीवों के गुरु होने के

कारण उनके आचरण तथा चरित्र को इतना आदर्श होना चाहिए कि लोग ऐसे उदात्त आचरण का अनुसरण कर सकें और सर्वोच्च आध्यात्मिक लाभ उठा सकें। अत: उन्हें ऐसा कर्म नहीं करना चाहिए था जैसा उन्होंने किया।

तस्मै नमो भगवते य इदं स्वेन रोचिषा ।
आत्मस्थं व्यञ्जयामास स धर्मं पातुमर्हति ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

तस्मै—उसे; नम:—नमस्कार; भगवते—भगवान् को; य:—जो; इदम्—इस; स्वेन—अपने; रोचिषा—तेज से; आत्म-स्थम्—अपने में ही स्थित; व्यञ्जयाम् आस—प्रकट किया है; स:—वह; धर्मम्—धर्म की; पातुम्—रक्षा करने के लिए; अर्हति—ऐसा करे।

हम उन भगवान् को सादर नमस्कार करते हैं जिन्होंने आत्मस्थ होकर अपने ही तेज से इस ब्रह्माण्ड को प्रकट किया है। वे समस्त कल्याण हेतु धर्म की रक्षा करें!

तात्पर्य : संभोग के लिए कामेच्छा इतनी प्रबल होती है कि यहाँ पर ऐसा लगता है कि ब्रह्मा को मरीचि जैसे उनके महान् पुत्र अपनी याचना के बावजूद भी उनके संकल्प से विरत नहीं कर पाये। अत: इन महान् पुत्रों ने ब्रह्मा की सद्बुद्धि के लिए भगवान् से प्रार्थना करना शुरू कर दिया। यह तो एकमात्र भगवान् की कृपा ही है, जिससे मनुष्य को कामेच्छाओं की लालसा से बचाया जा सकता है। भगवान् उन भक्तों को संरक्षण प्रदान करते हैं, जो उनकी दिव्य प्रेमाभक्ति में सदैव लगे रहते हैं और वे अपनी अहैतुकी कृपा से भक्त को उसके अकस्मात् पतन से बचा लेते हैं। अत: मरीचि जैसे ऋषियों ने भगवान् की कृपा के लिए प्रार्थना की और उनकी प्रार्थना फलदायी रही।

स इत्थं गृणत: पुत्रान्पुरो दृष्ट्वा प्रजापतीन्
प्रजापतिपतिस्तन्वं तत्याज व्रीडितस्तदा ।
तां दिशो जगृहुर्घोरां नीहारं यद्विदुस्तम: ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

स:—वह (ब्रह्मा); इत्थम्—इस प्रकार; गृणत:—बोलते हुए; पुत्रान्—पुत्र; पुर:—पहले; दृष्ट्वा—देखकर; प्रजा-पतीन्—जीवों के पूर्वजों को; प्रजापति-पति:—उन सबों के पिता (ब्रह्मा); तन्वम्—शरीर; तत्याज—त्याग दिया; व्रीडित:—लज्जित; तदा—उस समय; ताम्—उस शरीर को; दिश:—सारी दिशाएँ; जगृहु:—स्वीकार किया; घोराम्—निन्दनीय; नीहारम्—नीहार, कुहरा; यत्—जो; विदु:—वे जानते हैं; तम:—अंधकार के रूप में।

अपने समस्त प्रजापति पुत्रों को इस प्रकार बोलते देख कर समस्त प्रजापतियों के पिता ब्रह्मा अत्यधिक लज्जित हुए और तुरन्त ही उन्होंने अपने द्वारा धारण किये हुए शरीर को त्याग दिया।

बाद में वही शरीर अंधकार में भयावह कुहरे के रूप में सभी दिशाओं में प्रकट हुआ।

तात्पर्य : अपने पापमय कृत्यों की क्षति-पूर्ति के लिए प्रायश्चित्त का सर्वोत्तम उपाय अपने शरीर को तुरन्त त्याग देना है और जीवों के नायक ब्रह्मा ने इसे अपने उदाहरण से दिखला दिया। ब्रह्मा की आयु असीम होती है किन्तु उन्हें अपने घोर पाप के कारण, जिसे उन्होंने मन में केवल सोचा ही था, वास्तव में किया नहीं था, अपना शरीर त्यागना पड़ा।

यह जीवों के लिए शिक्षा है, जो यह दिखाती है कि अनियंत्रित यौन जीवन में संलग्न होना कितना पापपूर्ण कृत्य है। गर्हित यौन जीवन के विषय में सोचना भी पापपूर्ण है और ऐसे पापपूर्ण कृत्यों की क्षतिपूर्ति के लिए मनुष्य को अपना शरीर त्यागना होता है। दूसरे शब्दों में, मनुष्य की आयु, वरदान, ऐश्वर्य इत्यादि सभी बातें पापपूर्ण कृत्यों से घटती हैं और सबसे भयावह पापपूर्ण कृत्य है अनियंत्रित यौन।

पापमय जीवन का कारण अज्ञान है अथवा पापमय जीवन ही निपट अज्ञान का कारण है। अज्ञान की विशेषता है अंधकार या कुहरा। अंधकार या कुहरा अब भी सारे ब्रह्माण्ड को आच्छादित किये है और सूर्य एकमात्र उसका प्रतिकार है। जो व्यक्ति नित्य प्रकाश रूप भगवान् की शरण ग्रहण करता है उसे कुहरे या अज्ञान के अंधकार में विलोप होने का भय नहीं रहता।

कदाचिद्ध्यायतः स्रष्टुर्वेदा आसंश्चतुर्मुखात् ।
कथं स्रक्ष्याम्यहं लोकान्समवेतान्यथा पुरा ॥ ३४॥

शब्दार्थ

कदाचित्—एक बार; ध्यायतः—ध्यान करते समय; स्रष्टुः—ब्रह्मा का; वेदाः—वैदिक वाङ्मय; आसन्—प्रकट हुए; चतुः-मुखात्—चारों मुखों से; कथम् स्रक्ष्यामि—मैं किस तरह सृजन करूँगा; अहम्—मैं; लोकान्—इन सारे लोकों को; समवेतान्—एकत्रित; यथा—जिस तरह वे थे; पुरा—भूतकाल में।

एक बार जब ब्रह्माजी यह सोच रहे थे कि विगत कल्प की तरह लोकों की सृष्टि कैसे की जाय तो चारों वेद, जिनमें सभी प्रकार का ज्ञान निहित है, उनके चारों मुखों से प्रकट हो गये।

तात्पर्य : जिस तरह अग्नि बिना दूषित हुए हर वस्तु को क्षार कर सकती है उसी तरह भगवत्कृपा से ब्रह्मा की महानता रूपी अग्नि ने उनकी पुत्री के साथ पापपूर्ण यौनाचार की उनकी इच्छा को क्षार कर दिया। वेद समस्त ज्ञान के स्रोत हैं और जब ब्रह्मा पुनः सृष्टि करने का विचार कर रहे थे तो पूर्ण

पुरुषोत्तम भगवान की कृपा से वे सर्वप्रथम ब्रह्मा को ही उद्घाटित किए गए। ब्रह्मा अपनी भगवद्भक्ति के कारण शक्तिशाली हैं। भगवान् अपने उस भक्त को सदैव क्षमा करने के लिए तैयार रहते हैं, जो कदाचित् अपने भक्ति के सन्मार्ग से पतित हो जाता है। *श्रीमद्भागवत* (११.५.४२) में इसकी पुष्टि इस प्रकार हुई है।

स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य त्यक्त्वान्यभावस्य हरिः परेशः।

विकर्म यच्चोत्पतितं कथंचिद् धुनोति सर्वं हृदि संनिविष्टः॥

"जो व्यक्ति पूरी तरह से भगवान् के चरणकमलों पर उनकी दिव्य प्रेमाभक्ति में लगा रहता है, वह भगवान् हरि को अत्यन्त प्रिय है और भगवान् भक्त के हृदय में स्थित होकर संयोगवश किये गये सभी प्रकार के पापों को क्षमा कर देते हैं।" यह कभी भी आशा नहीं की जाती थी कि ब्रह्मा जैसा महापुरुष अपनी पुत्री के साथ संभोग करने का विचार भी करेगा। ब्रह्मा द्वारा प्रस्तुत किया गया उदाहरण केवल यह निर्देशित करता है कि भौतिक प्रकृति की शक्ति इतनी प्रबल है कि यह किसी पर भी, यहाँ तक कि ब्रह्मा पर भी, अपना प्रभाव दिखा सकती है। ब्रह्माजी अत्यल्प दण्ड के साथ भगवत्कृपा से बचा लिए गये, किन्तु भगवत्कृपा से महान् ब्रह्मा के रूप में उनकी प्रतिष्ठा समाप्त नहीं हुई।

चातुर्होत्रं कर्मतन्त्रमुपवेदनयैः सह ।
धर्मस्य पादाश्चत्वारस्तथैवाश्रमवृत्तयः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

चातुः—चार; होत्रम्—यज्ञ की सामग्री; कर्म—कर्म; तन्त्रम्—ऐसे कार्यकलापों का विस्तार; उपवेद—वेदों के पूरक; नयैः—तथा तर्कशास्त्रीय निर्णय; सह—साथ; धर्मस्य—धर्म के; पादाः—सिद्धान्त; चत्वारः—चार; तथा एव—इसी प्रकार से; आश्रम—सामाजिक व्यवस्था; वृत्तयः—वृत्तियाँ, पेशे।

अग्नि यज्ञ को समाहित करने वाली चार प्रकार की साज-सामग्री प्रकट हुई। ये प्रकार हैं यज्ञकर्ता, होता, अग्नि तथा उपवेदों के रूप में सम्पन्न कर्म। धर्म के चार सिद्धान्त (सत्य, तप, दया, शौच) एवं चारों आश्रमों के कर्तव्य भी प्रकट हुए।

तात्पर्य : खाना, सोना, रक्षा करना तथा संभोग करना—ये चार शारीरिक माँगें पशुओं तथा मनुष्यों में समान रूप से पाई जाती हैं। मानव समाज को पशुओं से विलग करने के लिए वर्णों तथा आश्रमों के रूप में धार्मिक कार्यकलाप सम्पन्न किये जाते हैं। उनका स्पष्ट उल्लेख वैदिक ग्रन्थों में पाया जाता है

और जब चारों वेद ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए तो ब्रह्मा द्वारा इनका प्राकट्य किया गया। इस तरह वर्णाश्रम के रूप में मानव कर्तव्यों की स्थापना की गई जिससे सभ्य पुरुष इनका पालन कर सकें। जो लोग परम्परा-गत रुप से इन सिद्धान्तों का पालन करते हैं, वे आर्य या प्रगतिशील मानव कहलाते हैं।

विदुर उवाच
स वै विश्वसृजामीशो वेदादीन्मुखतोऽसृजत् ।
यद्यद्येनासृजद्देवस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

विदुरः उवाच—विदुर ने कहा; सः—वह (ब्रह्मा); वै—निश्चय ही; विश्व—ब्रह्माण्ड; सृजाम्—सृजनकर्ताओं का; ईशः—नियन्ता; वेद-आदीन्—वेद इत्यादि.; मुखतः—मुख से; असृजत्—स्थापित किया; यत्—जो; यत्—जो; येन—जिससे; असृजत्—उत्पन्न किया; देवः—देवता; तत्—वह; मे—मुझसे; ब्रूहि—बतलाइये; तपः-धन—हे मुनि, तपस्या जिसका एकमात्र धन है।.

विदुर ने कहा, हे तपोधन महामुनि, कृपया मुझसे यह बतलाएँ कि ब्रह्मा ने किस तरह और किसकी सहायता से उस वैदिक ज्ञान की स्थापना की जो उनके मुख से निकला था।

मैत्रेय उवाच
ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यान्वेदान्पूर्वादिभिर्मुखैः ।
शास्त्रमिज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं व्यधात्क्रमात् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने कहा; ऋक्-यजुः-साम-अथर्व—चारों वेद; आख्यान्—नामक; वेदान्—वैदिक ग्रन्थ; पूर्व-आदिभिः—सामने से प्रारम्भ करके; मुखैः—मुखों से; शास्त्रम्—पूर्व अनुच्चरित वैदिक मंत्र; इज्याम्—पौरोहित्य अनुष्ठान; स्तुति-स्तोमम्—बाँचने वालों की विषयवस्तु; प्रायश्चित्तम्—दिव्य कार्य; व्यधात्—स्थापित किया; क्रमात्—क्रमशः।.

मैत्रेय ने कहा : ब्रह्मा के सामने वाले मुख से प्रारम्भ होकर क्रमशः चारों वेद—ऋक्, यजुः, साम और अथर्व—आविर्भूत हुए। तत्पश्चात् इसके पूर्व अनुच्चरित वैदिक स्तोत्र, पौरोहित्य अनुष्ठान, पाठ की विषयवस्तु तथा दिव्य कार्यकलाप एक-एक करके स्थापित किये गये।

आयुर्वेदं धनुर्वेदं गान्धर्वं वेदमात्मनः ।
स्थापत्यं चासृजद्वेदं क्रमात्पूर्वादिभिर्मुखैः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

आयुः-वेदम्—औषधि विज्ञान; धनुः-वेदम्—सैन्य विज्ञान; गान्धर्वम्—संगीतकला; वेदम्—ये सभी वैदिक ज्ञान हैं; आत्मनः—अपने से; स्थापत्यम्—वास्तु सम्बन्धी विज्ञान; च—भी; असृजत्—सृष्टि की; वेदम्—ज्ञान; क्रमात्—क्रमशः; पूर्व-आदिभिः—सामने वाले मुख से प्रारम्भ करके; मुखैः—मुखों द्वारा।.

उन्होंने ओषधि विज्ञान, सैन्य विज्ञान, संगीत कला तथा स्थापत्य विज्ञान की भी सृष्टि वेदों से

की। ये सभी सामने वाले मुख से प्रारम्भ होकर क्रमशः प्रकट हुए।

तात्पर्य : वेदों में पूर्ण ज्ञान पाया जाता है, जिसमें न केवल इस लोक के अपितु अन्य मानव लोकों के समाज के लिए भी आवश्यक सभी प्रकार का ज्ञान सम्मिलित है। ऐसा समझा जाता है कि सामाजिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए सैन्य कला भी उसी तरह आवश्यक ज्ञान है, जिस तरह संगीत कला है। ज्ञान के ये सारे समूह *उप-पुराण* या वेदों के पूरक कहलाते हैं। वेदों का मुख्य विषय आध्यात्मिक ज्ञान है। किन्तु मनुष्यों के ज्ञान की आध्यात्मिक रुचि में सहायता पहुँचाने के लिए अन्य जानकारी वैदिक ज्ञान की आवश्यक सूचनाओं का निर्माण करती है जैसाकि ऊपर कहा गया है।

इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः ।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

इतिहास—इतिहास; पुराणानि—पुराण (पूरक वेद); पञ्चमम्—पाँचवाँ; वेदम्—वैदिक वाङ्मय; ईश्वरः—भगवान्; सर्वेभ्यः—सब मिला कर; एव—निश्चय ही; वक्त्रेभ्यः—अपने मुखों से; ससृजे—उत्पन्न किया; सर्व—चारों ओर; दर्शनः—जो हर समय देख सकता है।

तब उन्होंने अपने सारे मुखों से पाँचवें वेद—पुराणों तथा इतिहासों—की सृष्टि की, क्योंकि वे सम्पूर्ण भूत, वर्तमान तथा भविष्य को देख सकते थे।

तात्पर्य : विशिष्ट देशों तथा राष्ट्रों के और इसी के साथ संसार के अपने इतिहास हैं, किन्तु पुराण सारे ब्रह्माण्ड के, न केवल एक कल्प के अपितु अनेक कल्पों के, इतिहास हैं। ब्रह्मा को इन ऐतिहासिक तथ्यों का ज्ञान है, अतएव सभी पुराण इतिहास हैं। चूँकि उनकी मूल रचना ब्रह्मा द्वारा की गई, अतएव वे वेदों के अंग रूप हैं और पंचम वेद कहलाते हैं।

षोडश्युक्थौ पूर्ववक्त्रात्पुरीष्यग्निष्टुतावथ ।
आप्तोर्यामातिरात्रौ च वाजपेयं सगोसवम् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

षोडशी-उक्थौ—यज्ञ के प्रकार; पूर्व-वक्त्रात्—पूर्वी मुँह से; पुरीषि-अग्निष्टुतौ—यज्ञ के प्रकार; अथ—तब; आप्तोर्याम-अतिरात्रौ—यज्ञ के प्रकार; च—तथा; वाजपेयम्—एक प्रकार का यज्ञ; स-गोसवम्—एक प्रकार का यज्ञ।

ब्रह्मा के पूर्वी मुख से विभिन्न प्रकार के समस्त अग्नि यज्ञ (षोडशी, उक्थ, पुरीषि, अग्निष्टोम, आप्तोर्याम, अतिरात्र, वाजपेय तथा गोसव) प्रकट हुए।

विद्या दानं तपः सत्यं धर्मस्येति पदानि च ।
आश्रमांश्च यथासङ्ख्यमसृजत्सह वृत्तिभिः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

विद्या—विद्या; दानम्—दान; तपः—तपस्या; सत्यम्—सत्य; धर्मस्य—धर्म का; इति—इस प्रकार; पदानि—चार पाँव; च—भी; आश्रमान्—आश्रमों; च—भी; यथा—वे जिस प्रकार के हैं; सङ्ख्यम्—संख्या में; असृजत्—रचना की; सह—साथ-साथ; वृत्तिभिः—पेशों या वृत्तियों के द्वारा।

शिक्षा, दान, तपस्या तथा सत्य को धर्म के चार पाँव कहा जाता है और इन्हें सीखने के लिए चार आश्रम हैं जिनमें वृत्तियों के अनुसार जातियों (वर्णों) का अलग-अलग विभाजन रहता है। ब्रह्मा ने इन सबों की क्रमबद्ध रूप में रचना की।

तात्पर्य : चारों आश्रमों—ब्रह्मचर्य अर्थात् छात्र जीवन, गृहस्थ अर्थात् पारिवारिक जीवन, वानप्रस्थ अर्थात् तपस्या के निमित्त निवृत्त जीवन तथा संन्यास अर्थात् सत्य के प्रचार हेतु विरक्त जीवन—के केन्द्र धर्म के चार पाँव हैं। वृत्तिपरक विभाग हैं—ब्राह्मण अर्थात् बुद्धिमान वर्ग, क्षत्रिय अर्थात् प्रशासक वर्ग, वैश्य अर्थात् व्यापारी वर्ग तथा शूद्र अर्थात् बिना किसी विशेष योग्यता वाले सामान्य श्रमिक वर्ग। ब्रह्मा ने आत्म-साक्षात्कार में नियमित उन्नति के लिए इन सबों की क्रमबद्ध योजना तथा रचना की। ब्रह्मचर्य सर्वोत्तम शिक्षा प्राप्त करने के निमित्त है; गृहस्थ इन्द्रियतृप्ति के लिए है बशर्ते कि यह मन की उदारवृत्ति से की जाय; वानप्रस्थ आध्यात्मिक जीवन में प्रगति के हेतु तपस्या करने के लिए है और संन्यास सामान्य लोगों को परम सत्य के विषय में उपेदश देने के निमित्त है। समाज के सारे सदस्यों के मिलेजुले कार्यों से मानव जीवन के उद्देश्य के उत्थान हेतु अनुकूल स्थिति उत्पन्न करनी है। इस सामाजिक संस्थान की शुरुआत उस शिक्षा पर आधारित है, जो मनुष्य की पाशविक लालसाओं को शुद्ध करने के लिए है। सर्वोच्च शुद्धीकरण (संस्कार) विधि शुद्धों में परम शुद्ध पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान का ज्ञान है।

सावित्रं प्राजापत्यं च ब्राह्मं चाथ बृहत्तथा ।
वार्ता सञ्चयशालीनशिलोञ्छ इति वै गृहे ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

सावित्रम्—द्विजों का यज्ञोपवीत संस्कार; प्राजापत्यम्—एक वर्ष तक व्रत रखने के लिए; च—तथा; ब्राह्मम्—वेदों की स्वीकृति; च—तथा; अथ—भी; बृहत्—यौनजीवन से पूर्ण विरक्ति; तथा—तब; वार्ता—वैदिक आदेश के अनुसार वृत्ति;

सञ्चय—वृत्तिपरक कर्तव्य; शालीन—किसी का सहयोग माँगे बिना जीविका; शिल-उञ्छः—त्यक्त अन्नों को बीनना; इति—इस प्रकार; वै—यद्यपि; गृहे—गृहस्थ जीवन में।

तत्पश्चात् द्विजों के लिए यज्ञोपवीत संस्कार (सावित्र) का सूत्रपात हुआ और उसी के साथ वेदों की स्वीकृति के कम से कम एक वर्ष बाद तक पालन किये जाने वाले नियमों (प्राजापत्यम्), यौनजीवन से पूर्ण विरक्ति के नियम (बृहत्), वैदिक आदेशों के अनुसार वृत्तियाँ (वार्ता), गृहस्थ जीवन के विविध पेशेवार कर्तव्य (सञ्चय) तथा परित्यक्त अन्नों को बीन कर (शिलोञ्छ) एवं किसी का सहयोग लिए बिना (अयाचित) जीविका चलाने की विधि का सूत्रपात हुआ।

तात्पर्य : विद्यार्थी जीवन में *ब्रह्मचारियों* को मनुष्यजीवन की महत्ता के विषय में पूर्ण शिक्षा दी जाती थी। इस तरह प्रारम्भिक शिक्षा विद्यार्थी को पारिवारिक झंझटों से मुक्त बनने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए थी। जो विद्यार्थी ऐसे व्रत को स्वीकार करने में अक्षम होते थे केवल उन्हें घर वापस जाने और उपयुक्त पत्नी से विवाह करने की अनुमति दी जाती थी। अन्यथा विद्यार्थी जीवन भर यौन जीवन से पूरी तरह विरत रहकर स्थायी *ब्रह्मचारी* बना रहता था। यह सब विद्यार्थी के प्रशिक्षण की गुणवत्ता पर निर्भर करता था। हमें अपने ॐ गुरु विष्णुपाद श्री श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त गोस्वामी महाराज जैसे व्रतधारी ब्रह्मचारी से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ था। ऐसे महापुरुष *नैष्ठिक ब्रह्मचारी* कहलाते हैं।

वैखानसा वालखिल्यौदुम्बराः फेनपा वने ।
न्यासे कुटीचकः पूर्वं बह्वोदो हंसनिष्क्रियौ ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

वैखानसाः—ऐसे मनुष्य जो सक्रिय जीवन से अवकाश लेकर अध-उबले भोजन पर निर्वाह करते हैं; वालखिल्य—वह जो अधिक अन्न पाने पर पुराने संग्रह को त्याग देता है; औदुम्बराः—बिस्तर से उठकर जिस दिशा की ओर आगे जाने पर जो मिले उसी पर निर्वाह करना; फेनपाः—वृक्ष से स्वतः गिरे हुए फलों को खाकर रहने वाला; वने—जंगल में; न्यासे—संन्यास आश्रम में; कुटीचकः—परिवार से आसक्तिरहित जीवन; पूर्वम्—प्रारम्भ में; बह्वोदः—सारे भौतिक कार्यों को त्याग कर दिव्य सेवा में लगे रहना; हंस—दिव्य ज्ञान में पूरी तरह लगा रहने वाला; निष्क्रियौ—सभी प्रकार के कार्यों को बन्द करते हुए।

वानप्रस्थ जीवन के चार विभाग हैं—वैखानस, वाल-खिल्य, औदुम्बर तथा फेनप। संन्यास आश्रम के चार विभाग हैं—कुटीचक, बह्वोद, हंस तथा निष्क्रिय। ये सभी ब्रह्मा से प्रकट हुए थे।

तात्पर्य : *वर्णाश्रम धर्म* अर्थात् चार वर्णों तथा सामाजिक एवं आध्यात्मिक जीवन के चार आश्रमों

का संस्थान आधुनिक युग की कोई नयी ईजाद नहीं है जैसाकि अल्पज्ञों का प्रस्ताव है। यह ऐसा संस्थान है, जिसकी स्थापना ब्रह्मा द्वारा सृष्टि के प्रारम्भ में की गई। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* से (४.१३) भी होती है— *चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टम्*।

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्तथैव च ।
एवं व्याहृतयश्चासन्प्रणवो ह्यस्य दहृतः ॥ ४४॥

शब्दार्थ

आन्वीक्षिकी—तर्क; त्रयी—तीन लक्ष्य जिनके नाम धर्म, अर्थ तथा मोक्ष हैं; वार्ता—इन्द्रियतृप्ति; दण्ड—विधि तथा व्यवस्था; नीतिः—आचरण सम्बन्धी संहिता; तथा—भी; एव च—क्रमशः; एवम्—इस प्रकार; व्याहृतयः—भूः भुवः तथा स्वः नामक विख्यात स्तोत्र; च—भी; आसन्—उत्पन्न हुए; प्रणवः—ॐकार; हि—निश्चय ही; अस्य—उसका (ब्रह्मा का); दहृतः—हृदय से।

तर्कशास्त्र विज्ञान, जीवन के वैदिक लक्ष्य, कानून तथा व्यवस्था, आचार संहिता तथा भूः भुवः स्वः नामक विख्यात मंत्र—ये सब ब्रह्मा के मुख से प्रकट हुए और उनके हृदय से प्रणव ॐकार प्रकट हुआ।

तस्योष्णिगासील्लोमभ्यो गायत्री च त्वचो विभोः ।
त्रिष्टुम्मांसात्स्नुतोऽनुष्टुब्जगत्यस्थ्नः प्रजापतेः ॥ ४५॥

शब्दार्थ

तस्य—उसका; उष्णिक्—एक वैदिक छन्द; आसीत्—उत्पन्न हुआ; लोमभ्यः—शरीर पर के रोमों से; गायत्री—प्रमुख वैदिक स्तोत्र; च—भी; त्वचः—चमड़ी से; विभोः—प्रभु के; त्रिष्टुप्—एक विशेष प्रकार का छन्द; मांसात्—मांस से; स्नुतः—शिराओं से; अनुष्टुप्—अन्य छन्द; जगती—एक अन्य छन्द; अस्थ्नः—हड्डियों से; प्रजापतेः—जीवों के पिता के।

तत्पश्चात् सर्वशक्तिमान प्रजापति के शरीर के रोमों से उष्णिक अर्थात् साहित्यिक अभिव्यक्ति की कला उत्पन्न हुई। प्रमुख वैदिक मंत्र गायत्री जीवों के स्वामी की चमड़ी से उत्पन्न हुआ, त्रिष्टुप् उनके माँस से, अनुष्टुप् उनकी शिराओं से तथा जगती छन्द उनकी हड्डियों से उत्पन्न हुआ।

मज्जायाः पङ्क्तिरुत्पन्ना बृहती प्राणतोऽभवत् ॥ ४६॥

शब्दार्थ

मज्जायाः—अस्थिमज्जा से; पङ्क्तिः—एक विशेष प्रकार का श्लोक; उत्पन्ना—उत्पन्न हुआ; बृहती—अन्य प्रकार का श्लोक; प्राणतः—प्राण से; अभवत्—उत्पन्न हुआ।

पंक्ति श्लोक लिखने की कला का उदय अस्थिमज्जा से हुआ और एक अन्य श्लोक बृहती लिखने की कला जीवों के स्वामी के प्राण से उत्पन्न हुई।

स्पर्शस्तस्याभवज्जीव: स्वरो देह उदाहृत
ऊष्माणमिन्द्रियाण्याहुरन्त:स्था बलमात्मन: ।
स्वरा: सप्त विहारेण भवन्ति स्म प्रजापते: ॥ ४७॥

शब्दार्थ

स्पर्श:—क से म तक के अक्षरों का समूह; तस्य—उसका; अभवत्—हुआ; जीव:—आत्मा; स्वर:—स्वर; देह:—उनका शरीर; उदाहृत:—व्यक्त किये जाते हैं; ऊष्माणम्—श, ष, स तथा ह अक्षर; इन्द्रियाणि—इन्द्रियाँ; आहु:—कहलाते हैं; अन्त:-स्था:—य, र, ल तथा व ये अन्तस्थ अक्षर हैं; बलम्—शक्ति; आत्मन:—उसका; स्वरा:—संगीत; सप्त—सात; विहारेण—ऐन्द्रिय कार्यकलाप के द्वारा; भवन्ति स्म—प्रकट हुए; प्रजापते:—जीवों के स्वामी का।

ब्रह्मा की आत्मा स्पर्श अक्षरों के रूप में, उनका शरीर स्वरों के रूप में, उनकी इन्द्रियाँ ऊष्म अक्षरों के रूप में, उनका बल अन्त:स्थ अक्षरों के रूप में और उनके ऐन्द्रिय कार्यकलाप संगीत के सप्त स्वरों के रूप में प्रकट हुए।

तात्पर्य : संस्कृत में १३ स्वर तथा ३५ व्यंजन हैं। स्वर हैं—*अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ए, ऐ, ओ,* तथा *औ* एवं व्यजंन हैं—*क, ख, ग, घ,* आदि। व्यंजनों में प्रथम २५ अक्षर *स्पर्श* कहलाते हैं। चार *अत:स्थ* भी है। *ऊष्मों* में से तीन (श, ष, स) तालव्य, मूर्धन्य तथा *दन्त्य* कहलाते हैं। *संगीत* के स्वर हैं *स, रे, ग, म, प, ध* तथा *नि*। ये ध्वनियाँ मूलत: *शब्द ब्रह्म* अर्थात् आध्यात्मिक ध्वनि कहलाती हैं। अतएव यह कहा जाता है कि ब्रह्मा की सृष्टि शब्द *ब्रह्म* के अवतार के रूप में महाकल्प में हुई। वेद शब्द ब्रह्म हैं, अतएव वैदिक वाङ्मय की ध्वनियों की भौतिक व्याख्या करने की कोई आवश्यकता नहीं है। वेदों का उच्चारण उसी रूप में किया जाना चाहिए जिस रूप में वे हैं, यद्यपि वे प्रतीक रूप में हमें भौतिक रूप से ज्ञात अक्षरों द्वारा प्रदर्शित किए जाते हैं। अन्ततोगत्वा कुछ भी भौतिक नहीं है, क्योंकि प्रत्येक वस्तु का उद्गम आध्यात्मिक जगत से होता है। इसीलिए भौतिक जगत उचित अर्थों में मोह या भ्रम कहलाता है। जो लोग स्वरूपसिद्ध हैं उनके लिए आत्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है।

शब्दब्रह्मात्मनस्तस्य व्यक्ताव्यक्तात्मन: पर: ।
ब्रह्मावभाति विततो नानाशक्त्युपबृंहित: ॥ ४८॥

शब्दार्थ

शब्द-ब्रह्म—दिव्य ध्वनि; आत्मन:—परमेश्वर श्रीकृष्ण; तस्य—उनका; व्यक्त—प्रकट; अव्यक्त-आत्मन:—अव्यक्त का; पर:—दिव्य; ब्रह्मा—परम; अवभाति—पूर्णतया प्रकट; वितत:—वितरित करते हुए; नाना—विविध; शक्ति—शक्तियाँ; उपबृंहित:—से युक्त।

ब्रह्मा दिव्य ध्वनि के रूप में भगवान् के साकार स्वरूप हैं, अतएव वे व्यक्त तथा अव्यक्त

की धारणा से परे हैं। ब्रह्मा परम सत्य के पूर्ण रूप हैं और नानाविध शक्तियों से समन्वित हैं।

तात्पर्य : ब्रह्मा का पद ब्रह्माण्ड भर में सबसे अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण पद है। यह ब्रह्माण्ड के सर्वाधिक पूर्ण व्यक्ति को प्रदान किया जाता है। जब इस पद को ग्रहण करने के लिए उपयुक्त जीव नहीं मिलता तो भगवान् को स्वयं ब्रह्मा बनना पड़ता है। भौतिक जगत में ब्रह्मा भगवान् का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं और *प्रणव* अर्थात् दिव्य ध्वनि उन्हीं से आती है। इसीलिए वे विविध शक्तियों से समन्वित रहते हैं जिनसे ही इन्द्र, चन्द्र तथा वरुण जैसे सारे देवता प्रकट होते हैं। उनके दिव्य महत्त्व को कम नहीं आँका जाना चाहिए, यद्यपि उन्होंने अपनी ही पुत्री के साथ रमण करने की प्रवृत्ति प्रदर्शित की थी। ब्रह्मा द्वारा ऐसी प्रवृत्ति के प्रदर्शन का एक अभिप्राय है और उन्हें सामान्य जीव की तरह गर्हित या निन्दनीय नहीं मानना चाहिए।

ततोऽपरामुपादाय स सर्गाय मनो दधे ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; अपराम्—अन्य; उपादाय—स्वीकार करके; सः—वह; सर्गाय—सृष्टि विषयक; मनः—मन; दधे—ध्यान दिया।

तत्पश्चात् ब्रह्मा ने दूसरा शरीर धारण किया जिसमें यौन जीवन निषिद्ध नहीं था और इस तरह वे आगे सृष्टि के कार्य में लग गये।

तात्पर्य : ब्रह्मा का पहला शरीर दिव्य था जिसमें यौनजीवन के प्रति अनुरक्ति वर्जित थी, अतएव यौन से सम्बद्ध होने के लिए उन्हें दूसरा शरीर अंगीकार करना पड़ा। इस तरह उन्होंने सृजन कार्य में अपने को लगाया। उनका पूर्व शरीर कुहरे में बदल गया जैसाकि पहले वर्णन हो चुका है।

ऋषीणां भूरिवीर्याणामपि सर्गमविस्तृतम् ।
ज्ञात्वा तद्धृदये भूयश्चिन्तयामास कौरव ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

ऋषीणाम्—ऋषियों का; भूरि-वीर्याणाम्—अत्यधिक पराक्रम से; अपि—के बावजूद; सर्गम्—सृष्टि; अविस्तृतम्—विस्तृत नहीं; ज्ञात्वा—जानकर; तत्—वह; हृदये—हृदय में; भूयः—पुन; चिन्तयाम् आस—विचार करने लगा; कौरव—हे कुरुपुत्र।

हे कुरुपुत्र, जब ब्रह्मा ने देखा कि अत्यन्त वीर्यवान ऋषियों के होते हुए भी जनसंख्या में पर्याप्त वृद्धि नहीं हुई तो वे गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगे कि जनसंख्या किस तरह बढ़ायी जाय।

अहो अद्भुतमेतन्मे व्यापृतस्यापि नित्यदा ।
न ह्येधन्ते प्रजा नूनं दैवमत्र विघातकम् ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

अहो—हाय; अद्भुतम्—अद्भुत है; एतत्—यह; मे—मेरे लिए; व्यापृतस्य—व्यस्त होते हुए; अपि—यद्यपि; नित्यदा—सदैव; न—नहीं; हि—निश्चय ही; एधन्ते—उत्पन्न करते हैं; प्रजाः—जीव; नूनम्—किन्तु; दैवम्—भाग्य; अत्र—यहाँ; विघातकम्—विरुद्ध, विपरीत।

ब्रह्मा ने अपने आप सोचा : हाय! यह विचित्र बात है कि मेरे सर्वत्र फैले हुए रहने पर भी ब्रह्माण्ड भर में जन-संख्या अब भी अपर्याप्त है। इस दुर्भाग्य का कारण एकमात्र भाग्य के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

एवं युक्तकृतस्तस्य दैवं चावेक्षतस्तदा ।
कस्य रूपमभूद्द्वेधा यत्कायमभिचक्षते ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; युक्त—सोच विचार करते; कृतः—ऐसा करते हुए; तस्य—उसका; दैवम्—दैवी शक्ति; च—भी; अवेक्षतः—देखते हुए; तदा—उस समय; कस्य—ब्रह्माण्ड; रूपम्—स्वरूप; अभूत्—प्रकट हो गया; द्वेधा—दोहरा; यत्—जो है; कायम्—उसका शरीर; अभिचक्षते—कहा जाता है।

जब वे इस तरह विचारमग्न थे और अलौकिक शक्ति को देख रहे थे तो उनके शरीर से दो अन्य रूप उत्पन्न हुए। वे अब भी ब्रह्मा के शरीर के रूप में विख्यात हैं।

तात्पर्य : ब्रह्मा के शरीर से दो शरीर उत्पन्न हुए। एक के मूच्छ थे और दूसरे के उभरे हुए वक्षस्थल। कोई भी उनके प्राकट्य के स्रोत को नहीं बतला सकता। इसीलिए आज भी वे *कायम्* कहलाते हैं जिसका अर्थ है ब्रह्मा का शरीर। इससे उनके पुत्र या पुत्री के रूप में उनके सम्बन्ध की कोई जानकारी नहीं मिलती।

ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

ताभ्याम्—उनके; रूप—रूप; विभागाभ्याम्—इस तरह विभक्त होकर; मिथुनम्—यौन सम्बन्ध; समपद्यत—ठीक से सम्पन्न किया।

ये दोनों पृथक् हुए शरीर यौन सम्बन्ध में एक दूसरे से संयुक्त हो गये।

यस्तु तत्र पुमान्सोऽभून्मनुः स्वायम्भुवः स्वराट् ।

स्त्री यासीच्छतरूपाख्या महिष्यस्य महात्मनः ॥ ५४॥

शब्दार्थ

यः—जो; तु—लेकिन; तत्र—वहाँ; पुमान्—नर; सः—वह; अभूत्—बना; मनुः—मनुष्यजाति का पिता; स्वायम्भुवः—स्वायंभुव नामक; स्व-राट्—पूर्णतया स्वतंत्र; स्त्री—नारी; या—जो; आसीत्—थी; शतरूपा—शतरूपा; आख्या—नामक; महिषी—रानी; अस्य—उसकी; महात्मनः—महात्मा।

इनमें से जिसका नर रूप था वह स्वायंभुव मनु कहलाया और नारी शतरूपा कहलायी जो महात्मा मनु की रानी के रुप में जानी गई।

तदा मिथुनधर्मेण प्रजा ह्येधाम्बभूविरे ॥ ५५॥

शब्दार्थ

तदा—उस समय; मिथुन—यौन जीवन; धर्मेण—विधि-विधानों के अनुसार; प्रजाः—सन्तानें; हि—निश्चय ही; एधाम्—बढ़ी हुई; बभूविरे—घटित हुई।

तत्पश्चात् उन्होंने सम्भोग द्वारा क्रमशः एक एक करके जनसंख्या की पीढ़ियों में वृद्धि की।

स चापि शतरूपायां पञ्चापत्यान्यजीजनत्
प्रियव्रतोत्तानपादौ तिस्रः कन्याश्च भारत ।
आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति सत्तम ॥ ५६॥

शब्दार्थ

सः—वह (मनु); च—भी; अपि—कालान्तर में; शतरूपायाम्—शतरूपा में; पञ्च—पाँच; अपत्यानि—सन्तानें; अजीजनत्—उत्पन्न किया; प्रियव्रत—प्रियव्रत; उत्तानपादौ—उत्तानपाद; तिस्रः—तीन; कन्याः—कन्याएँ; च—भी; भारत—हे भरत के पुत्र; आकूतिः—आकूति; देवहूतिः—देवहूति; च—तथा; प्रसूतिः—प्रसूति; इति—इस प्रकार; सत्तम—हे सर्वश्रेष्ठ।

हे भरतपुत्र, समय आने पर उसने (मनु ने) शतरूपा से पाँच सन्तानें उत्पन्न कीं—दो पुत्र प्रियव्रत तथा उत्तानपाद एवं तीन कन्याएँ आकूति, देवहूति तथा प्रसूति।

आकूतिं रुचये प्रादात्कर्दमाय तु मध्यमाम् ।
दक्षायादात्प्रसूतिं च यत आपूरितं जगत् ॥ ५७॥

शब्दार्थ

आकूतिम्—आकूति नामक कन्या; रुचये—रुचि मुनि को; प्रादात्—प्रदान किया; कर्दमाय—कर्दम मुनि को; तु—लेकिन; मध्यमाम्—बीच की (देवहूति); दक्षाय—दक्ष को; अदात्—प्रदान किया; प्रसूतिम्—सबसे छोटी पुत्री को; च—भी; यतः—जिससे; आपूरितम्—पूर्ण है; जगत्—सारा संसार।

पिता मनु ने अपनी पहली पुत्री आकूति रुचि मुनि को दी, मझली पुत्री देवहूति कर्दम मुनि को और सबसे छोटी पुत्री प्रसूति दक्ष को दी। उनसे सारा जगत जनसंख्या से पूरित हो गया।

तात्पर्य : यहाँ पर ब्रह्माण्ड की जनसंख्या के सृजन का इतिहास दिया गया है। ब्रह्माजी ब्रह्माण्ड में

आदि जीवित प्राणी हैं जिनसे मनु स्वायंभुव तथा उनकी पत्नी शतरूपा उत्पन्न हुई। मनु से दो पुत्र तथा तीन पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं और उन सबों से आज तक विभिन्न लोकों की जन-संख्या उत्पन्न हुई है। इसलिए ब्रह्मा सबों के पितामह कहलाते हैं और भगवान् ब्रह्मा के पिता होने से सारे जीवों के प्रपितामह कहलाते हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (११.३९) में इस प्रकार हुई है—

वायुर्यमोऽग्निर्वरुण: शशाङ्क:

प्रजापतिस्त्वं प्रपितामश्च।

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्व:

पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते॥

''आप वायु के स्वामी, परम न्यायी यम, अग्नि तथा वर्षा के स्वामी हैं। आप चन्द्रमा हैं तथा आप प्रपितामह हैं। अतएव मैं आपको पुन: पुन: सादर नमस्कार करता हूँ।''

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध के अन्तर्गत ''कुमारों तथा अन्यों की सृष्टि'' नामक बारहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।